इकाई 29 किसान और आदिवासी विद्रोह

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 1857 के पहले होने वाले किसान और आदिवासी आंदोलन की पृष्ठभूमि का उल्लेख कर सकेंगे,
- इन विद्रोहों के मुख्य मुद्दों का वर्णन कर सकेंगे,
- इन विद्रोहों में भागीदार और संगठन के स्वरूप को रेखांकित कर सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में भारत में औपनिवेशिक शासन की स्थापना की प्रक्रिया और इसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था, कानून, प्रशासन और जीवन के अन्य क्षेत्रों में आने वाले बदलावों का अध्ययन हम पहले कर चुके हैं। इस नए शासन और इसके द्वारा लाए गए परिवर्तनों की लोगों पर क्या प्रतिक्रिया हुई? क्या 1857 की क्रांति एक अलग-थलग घटना थी या इसके पहले भी इसी प्रकार के छिटपुट विद्रोह हो रहे थे? इस इकाई में 1857 के पूर्व अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में विदेशी शासन के प्रति किसानों और आदिवासियों के रवैये पर प्रकाश डाला जाएगा। तदनरूप इस इकाई में प्रमुख किसान और आदिवासी विद्रोहों, उनके उद्भव और स्वरूप की चर्चा की गई है।

29.2 किसान और आदिवासी विद्रोह का उद्भव

अंग्रेजों के आने के पूर्व भारत में मुगल शासकों और उनके अधिकारियों के खिलाफ भी विद्रोह हुआ करते थे। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के दौरान शासक वर्ग के खिलाफ अनेक किसान विद्रोह हुए। राज्य द्वारा अधिक भू-राजस्व का निर्धारण, राजस्व वसूल करने वाले अधिकारियों का भ्रष्ट आचरण और कड़ा व्यवहार आदि कुछ कारणों के फलस्वरूप किसान विद्रोह हुआ करते थे। इसके बावजूद भारत में औपनिवेशिक शासन कायम होने के बाद जो नीतियां अपनाई गई उनका भारतीय किसानों और आदिवासियों पर काफी विनाशकारी असर पड़ा।

खंड 4 में हमने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि किस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनी और उनके मुलाजिमों के फायदे के लिए अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को नष्ट किया। इस काल में भारतीय अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तन लाए गए :

- भारतीय बाज़ारों में ब्रिटेन के बने-बनाए माल के आ जाने से भारतीय हथकरघा और हस्तशिल्प उद्योग का विनाश,
- भारत से इंग्लैंड की ओर धन की निकासी (ड्रेन ऑफ वेल्थ),
- अंग्रेजी भू-राजस्व बंदोबस्त, नए करों का भारी बोझ, किसानों का अपनी जमीन से निकाला जाना, आदिवासी भूमि पर कब्जा,
- राजस्व वसूल करने वाले बिचौलिए, बिचौलिए काश्तकार और महाजनों के उदय से ग्रामीण समाज का शोषण तेजी से बढ़ना और मजबूत होना,
- आदिवासी क्षेत्रों में ब्रिटिश राजस्व प्रशासन का वर्चस्व; फलस्वरूप खेतों और जंगलों पर परंपरागत आदिवासी अधिकार का दमन।

इन बदलावों का किसान और आदिवासी समाज पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। कंपनी और उसके एजेंट किसानों के अधिशेष उत्पादन को हड़प लेते थे, करों का बोझ काफी बढ़ गया था। इन सबने मिला-जुलाकर किसानों को पूरी तरह से राजस्व वसूल करने वाले बिचौलिए अधिकारियों, व्यापारियों और महाजनों को चंगुल में फंसा दिया। इसके अलावा, उद्योग के नष्ट होने के कारण इस क्षेत्र में लगे मजदूर भी खेती की ओर उन्मुख हुए। भूमि पर दबाव बढ़ा, पर सरकार ने ऐसी भू-राजस्व और कृषि नीति अपनाई थी कि इससे कभी भी भारतीय कृषि का विकास संभव ही नहीं था।

एक तरफ ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के कारण खेती पर दबाव बढ़ा और भारतीय कृषि विनाश के कगार पर खड़ी हो गई, वहीं दूसरी ओर अंग्रेज सरकार ने किसान असंतोष को नजरअंदाज कर दिया। अंग्रेजों के कानून और न्यायालय भी किसानों के हक में नहीं थे, ये सरकार और उनके सहयोगियों, मसलन भूमिधर, व्यापारियों और महाजनों, का पक्ष लेते थे। औपनिवेशिक शासक के शोषण से तंग आकर और न्याय से निराश होकर अपनी रक्षा करने के लिए किसानों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। आदिवासी लोगों के असंतोष के कारण भी किसानों के असंतोष से बहुत अलग नहीं थे। पर उनके अधिक उग्र होने का एक कारण यह था कि उनकी स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता को एक बाहरी शक्ति ने छिन्न-भिन्न कर दिया था।

29.3 कुछ महत्वपूर्ण विद्रोह

अंग्रेजी शासन के सौ वर्ष पूरा होने के पहले ही किसानों और आदिवासियों का इकट्ठा होता असंतोष जन-विद्रोह के रूप में फूट पड़ा। यह भारत के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग समय में पनपा। इन विद्रोहों के तात्कालीन कारण अलग-अलग थे, पर कुल मिलाकर यह औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ विद्रोह था। हम संक्षेप में इस काल के कुछ विद्रोहों पर विचार-विमर्श करेंगे।

29.3.1 संन्यासी विद्रोह, 1763-1800

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ईस्ट इंडिया कंपनी के सरकारी पत्र-व्यवहार में कई बार फकीरों और संन्यासियों के छापे का जिक्र हुआ है। ये छापे उत्तरी बंगाल में पड़ते थे। 1770 में पड़े बंगाल के भीषण अकाल के पहले भी हिन्दू और मुस्लिम साधुओं के दल एक जगह से दूसरी जगह घूमा करते थे और धनाढ्य लोगों तथा सरकारी अधिकारियों के घरों को तथा खाद्यान्न भंडार पर अचानक आक्रमण कर लूट लिया करते थे। ये संन्यासी और फकीर धार्मिक भिक्षुक थे, पर मूलतः ये किसान थे, जिनकी जमीनें छिन गई थीं। किसानों की बढ़ती दिक्कतों, बढ़ते भू-राजस्व और 1770 के बंगाल के अकाल के कारण कई पदच्युत छोटे ज़मींदार, सेवानिवृत्त सैनिक और गांव के गरीब लोग इन संन्यासियों और फकीरों के दल में शामिल हो गए। ये बिहार और बंगाल में पाँच से सात हजार लोगों का दल बनाकर घूमते थे और आक्रमण की गुरिल्ला तकनीक अपनाते थे। आरंभ में, ये धनाढ्य व्यक्तियों के खाद्यान्न भंडार पर धावा बोला करते थे, बाद में सरकारी पदाधिकारियों पर भी आक्रमण करने लगे। वे सरकारी खजाने को लूटा करते थे। कभी-कभी लूटा गया धन गरीबों में वितरित कर दिया जाता था। बोगरा और मैमनसिंह में उन्होंने अपनी स्वतंत्र सरकार बनाई थी। समकालीन सरकारी रिकार्डों में इन विद्रोहों का अपने ढंग से इस प्रकार उल्लेख किया गया है :

"संन्यासी और फकीर के नाम से जाने जाने वाले डकैतों का एक दल है, जो इन इलाकों में अव्यवस्था फैलाए हुए है और तीर्थ-यात्रियों के रूप में ये बंगाल के प्रमुख हिस्सों में भिक्षा और लूटखसोट का काम करते हैं क्योंकि यह उनके लिए सबसे अधिक आसान काम है। अकाल के बाद के वर्षों में इनकी संख्या में अपार वृद्धि हुई और भूखे किसान इनके दल में शामिल हो गए, जिनके पास खेती की शुरुआत करने के लिए न बीज था न कोई साधन। 1772 की ठंड में बंगाल के निचले हिस्से के खेतों में इन्होंने खूब लूट मचाई, पचास से लेकर एक हजार का दल बनाकर ये लूटने, खसोटने और जलाने का काम किया करते थे।"

इन विद्रोहों की एक खासियत यह है कि इसमें हिन्दू और मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया। इन आंदोलनों के प्रमुख नेताओं में मंजर शाह, मूसा शाह, भवानी पाठक और देवी चौधरानी उल्लेखनीय हैं। 1800 ई. तक बंगाल और बिहार में अंग्रेजों के साथ संन्यासियों-फकीरों का संघर्ष होता रहा। अंग्रेजों ने इन विद्रोहों को दबाने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी।

I. संन्यासी विद्रोही

29.3.2 रंगपुर (बंगाल) का किसान विद्रोह, 1783

1957 के बाद बंगाल पर अंग्रेजों का प्रभुत्व कायम हो गया और उन्होंने ऐसी राजस्व नीतियाँ बनाईं, जिनके माध्यम से किसानों से अधिक से अधिक धन निचोड़ा जा सके। इससे आम आदमी भीषण संकट में पड़ गया। रंगपुर और दिनाजपुर बंगाल के ऐसे ही दो जिले थे, जहां ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके राजस्व ठेकेदार सभी प्रकार की अवैध मांग करते जा रहे थे। राजस्व वसूली अधिकारी का कड़ा रुख और जबरदस्ती वसूली किसानों की जिंदगी का आम हिस्सा बन गई थी। रंगपुर और दिनाजपुर के ठेकेदार देबी सिंह और उसके एजेंटों ने उत्तर बंगाल के इन दो जिलों में आतंक फैला रखा था। ज़मींदारों पर कर बढ़ा दिया गया, जिसका भुगतान किसानों अथवा रैयतों को करना पड़ता था। किसान देबी सिंह और उसके आदमियों की मांगों को पूरा करने में अपने को असमर्थ पा रहे थे। देबी सिंह और उसके आदमी किसानों को पीटा करते थे और कोड़े से उनकी चमड़ी उधेड़ दिया करते थे, उनके घर जला दिया करते थे, उनकी फसल नष्ट कर देते थे, यहां तक कि उनके घर की औरतों को भी नहीं छोड़ा जाता था।

किसानों ने कंपनी के अधिकारियों के सामने फरियाद की। पर उनकी फरियाद अनसुनी कर दी गई। न्याय न मिलने की स्थिति में किसानों ने कानून अपने हाथों में ले लिया। नगाड़ा बजाकर विद्रोही किसान, किसानों के विशाल समुदाय को इकट्ठा करते थे, किसान तलवार, भाला, तीर और कमान से लैस होते थे। उन्होंने धीरज नारायण को अपना नेता चुना और स्थानीय कचहरियों, ठेकेदारों के स्थानीय एजेंटों के खाद्यान्न भंडारों और सरकारी

पदाधिकारियों पर आक्रमण किया। कई बार उन्होंने सरकारी कैद से बंदियों को भी छुड़ा लिया। विद्रोहियों ने अपनी सरकार बनाई, सरकार को राजस्व देना बंद कर दिया और विद्रोह का खर्च चलाने के लिए किसानों से चंदा वसूल किया।

29.3.3 भील विद्रोह, 1818-31

भील मुख्य रूप से खानदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में बसे हुए थे। 1818 में खानदेश पर अंग्रेजों के आधिपत्य से भील आहत हुए और उन्हें यह लगने लगा कि उनके क्षेत्र पर बाहरी लोगों की घुसपैठ हो जाएगी। इसके अलावा, यह भी माना जाता है कि बाजीराव द्वितीय के विद्रोही मंत्री त्रिंबकाजी ने अंग्रेजों द्वारा खानदेश पर अधिपत्य जमाने के विरोध में भीलों को उकसाया था। 1819 में चारों तरफ विद्रोह की आग फैल गई और भीलों ने कई छोटे-छोटे दलों में मैदानी इलाकों को लूटा-खसोटा। अंग्रेजों के खिलाफ भील सरदार इस प्रकार का आक्रमण करते रहते थे। अंग्रेज सरकार एक तरफ अपनी शक्ति से उन्हें दबाने की कोशिश करती थी, दूसरी तरफ कल्याणकारी कार्यों द्वारा उनका हृदय जीतने की कोशिश करती थी। इसके बावजूद अंग्रेज भीलों को अपने पक्ष में न कर सके।

29.3.4 मैसूर का विद्रोह, 1830-31

टीपू सुल्तान की अंतिम हार के बाद अंग्रेजों ने मैसूर का शासन वोडियार शासकों को सौंप दिया और उन पर सहायक संधि थोप दी। मैसूर पर कंपनी का वित्तीय दबाव पड़ा, इस वित्तीय दबाव को पूरा करने के क्रम में शासकों ने मजबूर होकर जमींदारों से अधिक राजस्व की मांग की। अंत में इस राजस्व के बोझ का भार किसान के कंधे पर पड़ा। स्थानीय पदाधिकारियों के भ्रष्टाचार और लूट-खसोट ने किसानों की हालत और भी दयनीय बना दी।

किसानों का यह बढ़ता असंतोष अंततः मैसूर के नागर प्रांत में विद्रोह के रूप में फूट पड़ा। नागर के विद्रोही किसानों को आसपास के अन्य किसानों का समर्थन भी प्राप्त हुआ और उन्होंने क्रेम्सी के एक साधारण रैयत के पुत्र सरदार मल्ला को अपना नेता बनाया। किसानों ने मैसूर शासन की आज्ञा की अवहेलना की। कड़े प्रतिरोध के बाद अंग्रेजी सेना ने नागर पर पुनः कब्जा कर लिया और इसके बाद देश का प्रशासन अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

29.3.5 कोल विद्रोह, 1831-32

सिंहभूम के कोल शताब्दियों से अपने सरदारों के नेतृत्व में स्वतंत्र रूप से शासन करते आ रहे थे। उन्हें छोटा नागपुर और मयूरगंज के राजाओं ने कई बार अधीनस्थ करने की कोशिश की, पर उन्होंने इन राजाओं के प्रयत्नों को नाकाम कर दिया।

इस इलाके में अंग्रेजों के प्रवेश और कोल सरदारों की सत्ता के ऊपर अंग्रेजी कानून और व्यवस्था स्थापित करने के प्रयत्न ने आदिवासी जनता को उत्तेजित कर दिया है।

सिंहभूम और उसके आसपास के इलाकों पर अंग्रेजी हुकूमत कायम होने के बाद बाहर के लोग इस इलाके में बसने लगे, जिसके कारण काफी जमीन आदिवासी लोगों से बाहरी लोगों को हस्तांतरित होने लगी। आदिवासी भूमि का हस्तांतरण, व्यापारियों, महाजनों के आगमन और आदिवासी इलाके में अंग्रेजी कानून लागू होने से आदिवासी सरदारों की स्वतंत्र सत्ता का अस्तित्व संकट में पड़ गया। इन कारणों से आदिवासी जनता का असंतोष चरम सीमा पर पहुंच गया और यह असंतोष बाहरी लोगों के खिलाफ विद्रोह के रूप में सामने आया। यह विद्रोह रांची, हजारीबाग, पलामू और मानभूम तक फैल गया। बाहर से आकर बसे लोगों पर आक्रमण किया गया, उनके घर जला दिए गए, उनकी सम्पत्ति लूट ली गई। इस विद्रोह को अंग्रेज फौज ने कठोरता से दबा दिया।

29.3.6 फराइजी विद्रोह, 1838-51

फराइजी सम्प्रदाय की स्थापना फरीदपुर के हाजी शरियातुल्ला ने की थी। आरंभ में फराइजी आंदोलन अधिक राजस्व निर्धारण और बेदखल किए गए किसानों के असंतोष के कारण आरंभ हुआ, यह असंतोष जमींदारों और अंग्रेज शासकों के खिलाफ थे। इस सम्प्रदाय के संस्थापक के पुत्र दूदू मियां के नेतृत्व में यह सम्प्रदाय एक एकीकृत धार्मिक सम्प्रदाय हो गया और इसने एक समतावादी सिद्धांत अपनाया। उसका मानना था कि सभी लोग बराबर हैं और जमीन पर केवल ईश्वर का अधिकार है; और किसी को आम किसान पर कर आरोपित करने का कोई अधिकार नहीं है। फराजियों ने पूर्वी बंगाल के कुछ हिस्सों में समानांतर सरकार की स्थापना की और किसानों के झगड़ों को निपटाने के लिए ग्रामीण अदालत स्थापित की। उन्होंने जमींदारों की ज्यादतियों से किसानों की रक्षा की और किसानों से कहा कि वे जमींदार

की कर अदायगी न करें। उन्होंने जमींदार के घरों और कचहरियों को लूटा और पंच-चार में नील के कारखाने को जलाया। सरकार और जमींदार ने मिलकर इस आंदोलन को दबाया और दूदू मियां को कैद कर लिया गया।

29.3.7 मोपला विद्रोह, 1836-54

औपनिवेशिक शासन को चुनौती देने वाले किसान विद्रोहों में मालाबार के मोपलाओं का विद्रोह उल्लेखनीय है। मोपला अरब से आकर बसने वाले लोगों के वंशज थे, जिन्होंने हिंदू धर्म अपना लिया था। इनमें से अधिकांश खेतिहर किसान, भूमिहीन मजदूर, छोटे व्यापारी और मछुआरे थे। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक में मालाबार पर अंग्रेजों के अधिपत्य होने और इस इलाके में नई राजस्व व्यवस्था लागू करने से उनकी ज़िंदगी कष्टमय हो गई। सबसे महत्वपूर्ण बदलाव था ''जनामी'' के स्वरूप में परिवर्तन। पहले यह परंपरागत साझेदारी पर आधारित था, अब जमीन का मालिक एक व्यक्ति हो सकता था और मोपला काश्तकारों को जमीन से बेदखल किया जा सकता था, पहले इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं था। जरूरत से ज्यादा कर-निर्धारण, अवैध कर, जमीन से बेदखली, सरकारी कर्मचारियों का खराब रवैया आदि कुछ ऐसे कारण थे, जिनके कारण सरकार और भूमिधरों के खिलाफ मोपलाओं ने विद्रोह कर दिया।

धार्मिक नेताओं ने सामाजिक-धार्मिक सुधारों के माध्यम से मोपलाओं को अंग्रेजों और जमींदारों के खिलाफ-संगठित होने और उनमें चेतना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। मोपलाओं का बढ़ता असंतोष सरकार और जमींदारों के खिलाफ विद्रोह के रूप में फूट पड़ा। 1836 और 1854 के बीच मालाबार में छोटे-मोटे बाईस विद्रोह हुए। इन विद्रोहों में विशेष रूप से गरीब तबके के लोगों ने हिस्सा लिया। विद्रोहियों ने मुख्य रूप से ब्रिटिश अधिकारियों जनमियों और उनके दलालों पर हमला किया। अंग्रेजी फौज ने उन्हें दबाने में तत्परता से काम किया, पर कई वर्षों तक वे उसे दबा न सके।

29.3.8 संथाल विद्रोह, 1855-56

संथाल बीरभूम, बांकुरा, मुर्शिदाबाद, पाकुर, दुमका, भागलपुर और पूर्णिया ज़िले के रहने वाले थे। जहां संथाल सबसे ज्यादा संख्या में रहते थे, उसे दमन-ए-कोह या संथाल परगना के रूप मे जाना जाता था। जब इस इलाके में संथालों ने जंगल साफ करके खेती करनी शुरू की तो पड़ोस के महेशपुर और पाकुर के राजाओं ने संथाल गांवों को जमींदारों और महाजनों के हवाले कर दिया। इस इलाके में बाहरी लोगों (संथाल इन्हें ''दीकू'' कहते थे) के आने से सीधे-सादे संथालों की जिंदगी में एक तूफान आ गया, उनका शोषण किया जाने लगा, उनकी जिंदगी कष्टमय हो गई।

1956 में प्रकाशित ''कैलकटा रिव्यू'' में एक समकालीन लेखक ने संथालों की स्थिति का इन शब्दों में वर्णन किया है :

> ''जमींदार, पुलिस, राजस्व और न्यायालय सब मिलकर एक साथ सीधे-सादे और विनम्र संथालों का शोषण कर रहे हैं, उनकी जमीन और संपत्ति छीन रहे हैं, उन्हें अपमानित कर रहे हैं, पीट रहे हैं और तरह-तरह से सता रहे हैं। कर्ज के लिए उनसे 50 से 500 प्रतिशत तक सूद लिया जा रहा है, हाट और बाजार में उनका सामान कम तौला जा रहा है, उन गरीब लोगों के खेत में धनाढ्य लोग अपने जानवरों, टट्टूओं, खच्चरों और यहां तक कि हाथी को चरने के लिए छोड़ देते थे, और इस प्रकार की अनेक ज्यादतियां वे लोग अक्सर किया करते थे।''

महाजनों, व्यापारियों, जमींदारों और सरकारी अधिकारियों के शोषण से तंग आकर संथालों ने बगावत कर दी। आरंभ में संथालों ने जमींदारों और महाजनों के घरों में डकैती की और उन्हें लूटा। उनकी इन गतिविधियों को पुलिस और स्थानीय अधिकारियों ने दबाना शुरू किया, पुलिस की मार ने उन्हें और उग्र बना दिया। सिद्दू और कानू विद्रोही संथालों के नेता के रूप में उभर कर सामने आए। संथालों का मानना था कि ये दोनों भाई ईश्वर के भेजे हुए दूत हैं और इन्हें ''पुराने सुनहरे दिनों'' को लौटाने के लिए भेजा गया है। अपने परंपरागत अस्त्रों तीर-कमान, भाला, कुल्हाड़ी आदि से लैस होकर संथाल इकट्ठा हुए और उन्होंने जमींदारों और सरकारी अधिकारियों को शोषण बंद करने की धमकी देने का निर्णय लिया। उन्होंने अपनी ज़मीन वापस लेने और अपनी सरकार स्थापित करने का भी निर्णय लिया। इस चेतावनी को सरकारी महकमे में हल्के तौर पर लिया गया। परिणामस्वरूप संथालों ने जमींदारों, महाजनों और सरकारी अधिकारियों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह कर दिया। समूचे संथाल परगना में यह विद्रोह आग की तरह फैल गया। निम्न वर्ग के गैर-संथालियों ने भी इस

विद्रोह में संथालों का साथ दिया। सरकार और जमींदारों ने विद्रोहियों पर आक्रमण करना शुरू किया। संथालों ने वीरतापूर्वक संघर्ष किया, पर अंग्रेजों के पास श्रेष्ठ अस्त्र थे, अतः उनकी जीत हुई।

2. तिलका माझी (सन्थाल विद्रोही)

बोध प्रश्न 1

1) क्या आप इस काल में होने वाले किसान विद्रोहों के कुछ सामान्य कारणों की ओर इशारा कर सकते हैं? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) दूदू मियां ने बंगाल के किसानों को क्या संदेश दिए? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

29.4 1857 के पूर्व के लोकप्रिय विद्रोहों का स्वरूप

विभिन्न इतिहासकारों ने अलग-अलग तरीकों से किसान और आदिवासी आंदोलनों को व्याख्यायित किया है। अंग्रेजों के प्रति सहानुभूति रखने वाले और स्थापित व्यवस्था के

समर्थक इतिहासकार अक्सर इन विद्रोहों को कानून और व्यवस्था भंग करने वाला मानते हैं। ये इतिहासकार प्रायः इन विद्रोहों के मूल कारणों, मसलन इन किसानों और आदिवासियों की परेशानियों (अंग्रेजों के आने के पहले और बाद) को नजरअंदाज कर देते हैं। इन विद्रोहों को "सभ्यता" के खिलाफ "असभ्यता" के विरोध के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। राष्ट्रवादी इतिहासकार औपनिवेशिक विरोधी संघर्ष से किसान और आदिवासी इतिहास को अलग रखना चाहते हैं और इस प्रकार शोषित जनता के संघर्ष को नजरअंदाज करते हैं।

आदिवासियों और किसानों के विद्रोह से सहानुभूति रखने वाले इतिहासकार भी यह बात नहीं समझ पाते कि यह जनता के अपने अनुभवों का प्रस्फुटन था। किसानों और आदिवासियों के विद्रोहों को उनके खुद के परिप्रेक्ष्य में समझना बहुत जरूरी है, अभी इस प्रकार की शुरुआत लगभग न के बराबर हुई है।

29.4.1 नेतृत्व

हमने ऊपर आंदोलनों में नेतृत्व के सवाल पर विचार-विमर्श किया है, अर्थात् इन आंदोलनों को किन लोगों ने दिशा प्रदान की। इस दृष्टि से इस पहलू का अध्ययन आवश्यक है। इतिहास के इस कालखंड में आंदोलन के साथ कई नेता उभरे और इतिहास के पन्नों में समा गए। इन आंदोलनों का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ, उनमें बाहर के लोगों के नेतृत्व की कम गुंजाइश थी। विद्रोह शुरू होता था और जनता के बीच से ही एक नेता उभर कर सामने आता था। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ठीक उसके विपरीत हुआ। इसमें समाज के ऊपरी तबके के लोगों ने नेतृत्व की बागडोर संभाली, एक खास विचारधारा अपनाई और आदिवासी और किसान आंदोलनों में हस्तक्षेप किया।

इन आंदोलनों का नेतृत्व उन पुरुषों और महिलाओं के हाथ में गया जो किसानों के सांस्कृतिक अगुवा भी थे। उन्होंने शोषितों के विद्रोह को आवाज दी। फराइजी आंदोलन इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार धार्मिक पुरुष नेता के रूप में उभरकर सामने आए। एक ओर उन्होंने धर्म की पुरातन शुद्धता को स्थापित करने की कोशिश की और दूसरी ओर किसानों की समस्याओं को भी सुलझाने की कोशिश की। इस प्रकार, उन्होंने अपने सिद्धांतों द्वारा किसानों को संगठित किया। उन्होंने कहा कि सारी भूमि पर ईश्वर का अधिकार है और सभी का इस पर समान अधिकार है। इस प्रकार के सिद्धांत द्वारा उन्होंने धर्म की "शुद्धता" भी स्थापित की।

29.4.2 भागीदारी और संगठन

किसानों और आदिवासियों के आंदोलनों की कुछ विशेषताएं ऐसी हैं, जिन्हें देखने पर पता चलता है कि उनमें एक हद तक राजनीतिक और सामाजिक जागृति थी। उदाहरणस्वरूप, 1783 में देबी सिंह के खिलाफ विद्रोह हुआ और कचहरियों पर आक्रमण किया गया। ये कचहरियां किसानों के शोषण के राजनीतिक केंद्र का प्रतिनिधित्व करती थीं। इसी प्रकार 1832 में कोलों ने अपने दोस्तों को पहचानते हुए आदिवासी जनता पर आक्रमण नहीं किया। कई बार इन आंदोलनों का दायरा तात्कालिक असंतोष की सीमा का अतिक्रमण कर गया और कालांतर में उन मुद्दों को भी शामिल कर लिया गया जिनका आंदोलन की शुरुआत में नामो-निशान तक नहीं था। उदाहरण के लिए, मोपलाओं का आंदोलन आरंभ में जमींदारों के खिलाफ विद्रोह के रूप में हुआ था, पर अंत होते-होते यह आंदोलन अंग्रेजी शासन के खिलाफ विद्रोह में बदल गया। शोषित वर्ग प्रभावशाली वर्ग के खिलाफ विद्रोह करता है, यह विद्रोह प्रभावशाली वर्ग की भाषा, संस्कृति और धर्म के खिलाफ भी होता है। इस कारण आंदोलन के दौरान उनके भाषण में परंपरागत व्यवस्था के प्रति सम्मान और समर्पण का भाव नहीं होता और वे उनके धार्मिक स्थलों और शोषण के प्रतीकों को नहीं बख्शा करते। अतः विरोध अनेक रूपों में प्रकट हुआ, यह दैनिक जीवन के कार्यकलापों में भी प्रकट हुआ और संगठित विद्रोह के रूप में भी।

ये किसान और आदिवासी आंदोलन जन-विरोध और सामूहिक विरोध के रूप में सामने आए और इन आंदोलनों की इस दृष्टि से कुछ खास विशेषताएं हैं। इन आंदोलनों की अभिव्यक्ति जन-विरोध के रूप में खुलेआम होती थी। अतः आपराधिक वृत्ति से यह बिल्कुल भिन्न था। हालांकि अंग्रेज अधिकारी उन्हें अपराधी के रूप में चित्रित करते हैं, पर विद्रोहियों की कार्य-पद्धति से अलग तस्वीर सामने आती है। उदाहरण के लिए, गांवों पर आक्रमण करने के पहले संथाल कई बार चेतावनी दे देते थे। इस प्रकार की चेतावनी या उद्घोषणा को वैध बनाने के लिए किसी "असीम सत्ता" का सहारा ले लिया जाता था। उदाहरणस्वरूप, संथाल नेता सिद्धू और कानू ने दावा किया कि गोरी फौज के खिलाफ स्वयं "ठाकुर" (स्थानीय देवता)

युद्ध करेंगे। इसी वैधता के आधार पर रंगपुर के विद्रोही नेताओं ने किसानों पर ढिंग-खर्चा (विद्रोह के लिए राशि) लगाया। जन-वैधता प्राप्त होने के बाद आम सभाएं होने लगीं, योजनाएं बनाई जाने लगीं, परिषद का गठन होने लगा और आक्रमण किया जाने लगा। सिद्धू संथाल कहता है, "सभी परगन्नैतों और मांजियों ने मुझसे संपर्क किया और मुझे लड़ने की सलाह दी।" इसी प्रकार, बड़े-बड़े जुलूस निकालकर संघर्ष को एक वैध रूप प्रदान किया गया। उदाहरणस्वरूप, आंदोलन के नेताओं की सवारी पालकी में निकाली जाती थी और उनके अनुयायी उत्सव में पहना जाने वाला लाल रंग का कपड़ा पहनते थे। इसके अतिरिक्त सामूहिक श्रम द्वारा भी इस प्रकार के आंदोलनों को जन-स्वरूप प्रदान किया जाता था। उदाहरणस्वरूप, संथालों का भोजन मुख्य रूप से शिकार पर ही निर्भर था और वे विद्रोह को भी शिकार कहकर पुकारने लगे थे। पर अब "शिकार पकड़ने" का उपयोग बृहत् राजनीतिक उद्देश्य के अर्थ में होने लगा। हम देखते हैं कि इन आंदोलनों में आक्रमण के केंद्रों को एक खास दृष्टि से चुना गया और फिर उन पर आक्रमण किया गया, उन्हें जलाया और नष्ट किया गया।

एक शत्रु के खिलाफ विद्रोहियों को एकजुट करने में कौन-सा तत्व सक्रिय था? ये तत्व विभिन्न मात्रा में प्रायः वर्ग, जाति अथवा धार्मिक समुदायों के तनाव में निहित होता था। उदाहरणस्वरूप मोपला विद्रोह में धार्मिक आधार पर गरीब और अपेक्षाकृत समृद्ध किसानों के बीच एकता कायम हुई और वे जमींदारों के विरुद्ध संगठित हुए। इसी प्रकार, जातिगत आधार पर भी लोगों को संगठित किया गया। उदाहरण के लिए 1852 में सोनपुर के धांगर कोलों ने पहली बार इस क्षेत्र में विद्रोह किया। इनका समर्थन सिंहभूम के कोलों ने किया, जबकि अभी तक वहां किसी प्रकार की गड़बड़ी शुरू नहीं हुई थी। सामुदायिक गठबंधन से भी विरोध को एक बल मिलता था, हिचकने वाले लोगों पर दबाव डाला जाता था और विश्वासघातियों के साथ कड़ा व्यवहार किया जाता था।

शोषित किसानों और आदिवासियों का आंदोलन एक संपूर्ण शक्ल नहीं अख्तियार कर सका। आरंभिक अवस्था में यह सामाजिक गतिविधियों के रूप में उभरा, जिसे राज्य ने सीधे तौर पर अपराध की संज्ञा दे दी। ब्रिटिश रिकार्डों में अधिकांशतः इन क्रिया-कलापों के अपराध पक्ष पर ही जोर दिया गया है और आंदोलन के रूप में इनकी परिणति को पूर्णतः नजरअंदाज किया गया है। एक कटु सत्य यह भी है कि चोरी से लेकर हत्या तक के सभी अपराध गांव में पल रही भुखमरी और गरीबी के परिणाम थे। अक्सर विद्रोह होने के पहले गांवों में अपराधों की संख्या बढ़ जाती थी। उदाहरण के लिए, संथाल विद्रोह के एक साल पूर्व 1854 में स्थानीय महाजनों के यहां कई डकैतियां हुईं। बाद में संथाल नेताओं ने इन कार्यों को यह कहते हुए सही बताया कि महाजनों के खिलाफ उनकी शिकायत को अधिकारी कभी नहीं सुनते हैं।

किसान और आदिवासी विद्रोहों का विभिन्न प्रदेशों में प्रसार हुआ और ये विद्रोह क्षेत्रीय सोच ओर भौगोलिक सीमा से निर्देशित नहीं तो कम से कम प्रभावित अवश्य थे। यहां आंदोलन जातीय बंधनों से भी सम्पृक्त था। मसलन, संथालियों के लिए यह पितृभूमि की वापसी की लड़ाई थी, जिसे बाहरी व्यक्तियों ने हड़प लिया था। कभी-कभी जातीय सूत्र भौगोलिक सीमा को भी पार कर जाते थे, मसलन लारमा और धांगर कोलों ने विद्रोह में एक साथ हिस्सा लिया।

इसी प्रकार, परंपरा के प्रति मोह ने भी इन आंदोलनों को शक्ति प्रदान की। हम देख चुके हैं कि बगावत करने वाले हमेशा अपने अतीत की ओर लौटने की ओर बात करते थे, उस सुखद अतीत की ओर जहां वे सुख-चैन से रहते थे, उस अतीत की ओर जहां उनका शोषण नहीं होता था। फराइजी और संथाल विद्रोह इस तथ्य के सटीक उदाहरण हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि ये विरोधी आंदोलन परचगामी थे, बल्कि इसके माध्यम से इन्होंने संघर्ष के लिए एक आदर्श का निर्माण किया।

बोध प्रश्न 2

1) क्या हम कह सकते हैं कि किसान और आदिवासी विद्रोह के नेताओं में नेतृत्व की क्षमता थी? 50 शब्दों में उत्तर दें।

....

....

....

....

2) क्या विवेच्य काल के किसान और आदिवासी आंदोलन में किसी प्रकार की चेतना थी? कैसे?

....

....

....

....

....

29.5 सारांश

ऊपर हमने जिन किसान और आदिवासी आंदोलनों की चर्चा की, उनके बारे में यह कहा जाता है कि ये आंदोलन स्थानीय प्रकृति के थे और एक-दूसरे से बिल्कल असम्बद्ध थे। पर यह तथ्य पूर्णतः सही नहीं है, क्योंकि इन आंदोलनों में जातीय और धार्मिक तत्व भी काफी हद तक सक्रिय थे। निश्चित रूप से उस समय इन आंदोलनों को जोड़ने वाली एक अंतर्भूत चेतना का विकास नहीं हो सका था। अतः ये अलग-थलग पड़ गए थे। इस कारण से इस आंदोलनों का राष्ट्रीय आंदोलनों पर प्रभाव अक्षुण्ण रहा। एक तो ये आंदोलन एक-दूसरे से अलग-थलग विकसित हो रहे थे, दूसरे अंग्रेजों के पास एक संगठित शक्ति थी, अपेक्षाकृत अच्छे अस्त्र-शस्त्र थे। अतः अंग्रेजों की सफलता अवश्यंभावी थी। फिर भी असंतोष की प्रथम अभिव्यक्ति के रूप में इन आंदोलनों का अपना महत्व है। विवेच्य कालखंड के अंत में 1857 का विद्रोह हुआ, जो इन आंदोलनों का चरमोत्कर्ष था। इस आंदोलन में अंग्रेजों के खिलाफ किसानों के असंतोष के साथ-साथ जनता के अन्य तबकों का आक्रोश भी अभिव्यक्त हुआ। इस विद्रोह में जातीय, धार्मिक और जातिगत बंधन काफी पीछे छूट गए। इसने देश के कई हिस्सों में एक साथ अंग्रेजी शासन को चुनौती दी। अगली दो इकाइयों में हम 1857 के विद्रोह का अध्ययन करेंगे।

29.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 29.2
2) देखें भाग 29 3.6

बोध प्रश्न 2

1) देखें उपभाग 29.4.1
2) देखें उपभाग 29.4.2